स्वास्थ्य और अध्यात्म

चंचलमल चोरड़िया

जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर...

पहला सुख 'निरोगी काया' जानते, मानते और आवश्यक होते हुए भी आज मानव प्रायः कितना स्वस्थ एवं सुखी है ? यह जनसाधारण से छिपा हुआ नहीं है। प्रत्येक मनुष्य जीवन - पर्यन्त स्वस्थ रहना चाहता है। परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता। मृत्यु निश्चित है। जन्म के साथ आयुष्य के रूप में श्वासों का जो खजाना लेकर हम जन्म लेते हैं, वह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। जीवन के अंतिम क्षणों तक उस संचित, संग्रहीत प्राण-ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित, नियंत्रित एवं सही संचालित करके तथा उसका सही उपयोग करके ही हम शांत सुखी एवं स्वस्थ रहकर दीर्घ जीवन जी सकते हैं।

रोग क्या है ?

उपचार से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि रोग क्या है? रोग कहाँ, कब और क्यों होता है? उसके प्रत्यक्षअप्रत्यक्ष कारण क्या हैं तथा उसके सहायक एवं विरोधी तत्त्व क्या हैं? क्या शारीरिक रोगों का मन और आत्मा से संबंध है? शरीर की प्रतीकारात्मक शक्ति कैसे कम होती है? उसको बढ़ाने अथवा कम करने वाले तत्त्व कौन से हैं? वास्तव में प्राकृतिक नियमों के जाने-अनजाने वर्तमान अथवा भूतकाल में उल्लंघन अर्थात् असंयमित, अनियमित, अनियंत्रित, अविवेकपूर्ण स्वछन्द आचरण के द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक क्षमताओं का दुरुपयोग अथवा असंतुलन रोग है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर, मन और आत्मा ताल से ताल मिलाकर आचरण नहीं करते। शरीर की सभी क्रियाएँ, अंग, उपांग एवं अवयव अपना-अपना कार्य स्वतंत्रतापूर्वक नहीं कर पाते। फलतः शरीर के अवांछित विजातीय अनुपयोगी विकारों का बराबर विसर्जन नहीं होता। उनमें अवरोध उत्पन्न होने से जो पीड़ा, दर्द, कमजोरी, चैतन्य, शून्यता, तनाव, बैचेनी आदि की जो स्थिति शरीर में उत्पन्न होती है, वही रोग कहलाती है।

रोग का प्रारंभ आत्मविकारों से

मनुष्य का शरीर अनन्त गुणधर्मी है। अतः हमें अनेकान्त दृष्टिकोण से उसको समझना होगा तथा रोग उत्पन्न करने वाले कारणों से बचना होगा। शक्ति की सबसे गहरी एवं प्रथम परत आत्मा पर होती है। पूर्वजित कर्मो के अनुसार ही इस जन्म में हमें हमारी प्रज्ञा, श्रद्धा, आयुष्य, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय, अनुकूल-प्रतिकूल, संयोग-वियोग आदि मिलते हैं। हमारी आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एवं अनन्त सुख से परिपूर्ण है, परंतु कर्मों से आच्छादित होने के कारण उसका सही रूप प्रकट नहीं हो पाता। ज्ञानावरणीय कर्मों के अनुसार हमारी प्रज्ञा होती है। दर्शनावरणीय कर्मों के प्रभाव से हमें सोचने, समझने, विश्वास करने एवं चिन्तन की सही अथवा गलत दृष्टि मिलती है। वेदनीय कर्मों के अनुसार हमें सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। आयुष्य कर्मों के आधार पर हमारी आयुष्य का बन्ध होता है। मोहनीय कर्म राग-द्वेष एवं आसक्ति अथवा अनासक्ति के भाव पैदा करता है। गोत्र कर्म के अनुसार हमें कुल, परिवार, जाति, प्रथा आसपास का वातावरण मिलता है। नामकर्म के अनुरूप हमें पद और प्रतिष्ठा मिलती है। अंतराय कर्मों का उदय विकास एवं सुखद उपलब्धियों में अवरोध उत्पन्न करता है। जिसके परिणामस्वरूप सभी अनुकूलताएँ होते हुए भी इच्छित लक्ष्यप्राप्ति में कुछ न कुछ बाधा उपस्थित हो जाती है।

कर्मों की इन विसंगतियों का प्रभाव हम अपने आसपास के वातावरण में स्पष्ट अनुभव करते हैं। आत्मा पर आए इन कर्मों के आवरणों को मनुष्य जीवन में सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा दूर किया जा सकता है। सारे कर्मों का क्षय होने से मनुष्य नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान के रूप में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी व अनन्तसुखी बन जाता है। अपने स्वभाव में स्थित हो जाता है। यही सम्पूर्ण स्वस्थता है। यही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। जो आत्मोत्थान में जितना-जितना विकसित होता है, उतना-उतना ही आत्मबली बनता जाता है। रोगों की जड़ें ही समाप्त होने लगती हैं। उपचार की आवश्यकताएँ कम होती जाती हैं। आत्मा के विकार आत्मज्ञानी के मार्ग निर्देशन में व्यक्ति के सम्यक् पुरुषार्थ एवं सम्यक् आचरण से ही दूर किए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा सकते हैं। अतः हमें स्वस्थ रहने के लिए आत्मा में विकार बढ़ाने वाली प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

रोग में मन की भूमिका

शक्ति एवं रोग की दूसरी परत मन से संबंधित होती है। मन का जितना विकसित स्वरूप मानव-जीवन में प्राप्त होता है, उतना अन्य किसी प्राणी में नहीं मिलता। मन से ही मनन, चिंतन, कृति, विकृति, संकल्प, इच्छाओं, एषणा, भावनाओं का नियंत्रण होता है। मन बड़ा चंचल है। उसकी स्वछन्द एवं अनियंत्रित गतिविधियाँ अधिकांश रोगों की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मन को संयमित, नियंत्रित तथा अनुशासित रखने से हम अनेक रोगों से सहज ही बच जाते हैं। आज हम जितना ख्याल शारीरिक स्वच्छता-शुद्धता का रखते हैं, बाह्य पर्यावरण एवं प्रदूषण की चिंता करते हैं, क्या इतनी चिंता मन में उठने वाले क्रोध, हिंसा, क्रूरता, तिरस्कार, वासना आदि विचारों के प्रदूषण की करते हैं? इन आवेगों से ही रोग बढ़ते हैं। मन का नियंत्रण हमारी स्वयं की सजगता पर निर्भर करता है। इसी कारण एक जैसे रोग की स्थिति में एक व्यक्ति बहुत परेशान एवं बेचैन रहता है। हाय-हाय करता है, जबकि दूसरा तनिक भी विचलित नहीं होता। स्वस्थ चिंतन, मनन, स्वाध्याय, ध्यान एवं कार्योत्सर्ग द्वारा मन को अशुभ से शुभ, अनुपयोगी से उपयोगी प्रवृत्तियों में लगाया जा सकता है। जो स्वस्थ जीवन के लिए अति आवश्यक है।

शारीरिक लक्षणों पर आधारित रोग का निदान अपूर्ण--

आत्मा और मन के पश्चात् रोग एवं शक्ति की तीसरी परत होती है शरीर की आंतरिक क्रियाओं पर और अंत में उनके लक्षण बाह्य रूप से प्रकट होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जितने रोग अथवा उनके कारण होते हैं उतने हमारे ध्यान में नहीं आते। जितने ध्यान में आते हैं; उतने हम अभिव्यक्त नहीं कर सकते। जितने रोगों को अभिव्यक्त कर पाते हैं, वे सारे के सारे चिकित्सक अथवा अति आधुनिक समझी जाने वाली मशीनों की पकड़ में नहीं आते। जितने उनकी समझ से लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं, उन सभी का वे उपचार नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप जो लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं, उनके अनुसार आज रोगों का नामकरण किया जा रहा है तथा अधिकांश प्रचलित चिकित्सा-पद्धतियों का ध्येय उन लक्षणों को दूर कर रोगों से राहत पहुँचाने मात्र का होता है। विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ और उनमें कार्यरत चिकित्सक आज असाध्य एवं संक्रामक रोगों के उपचार के जो बड़े-बड़े दावे और विज्ञापन करते हैं, वे कितने भ्रामक तथा अस्थाई होते हैं, जिस पर पूर्वाग्रह छोड़ सम्यक् चिंतन आवश्यक है। जब निदान ही अधूरा हो, अपूर्ण हो तब प्रभावशाली उपचार के दावे छलावा नहीं तो क्या हैं ? अतः उपचार करते समय जो चिकित्सा-पद्धतियाँ शारीरिक व्याधियों को मिटाने के साथ-साथ मन एवं आत्मा के विकारों को दूर करती हैं, वे ही उपचार स्थाई एवं प्रभावशाली होते हैं, इसमें हमें तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिए। सत्य सनातन होता है। करोड़ों व्यक्तियों के कहने से दो और दो पाँच नहीं हो जाते हैं। दो और दो चार ही होते हैं। अतः जिन्हें स्थायी रूप से रोगमुक्त बनना हो, रोग के सभी कारणों से बचना एवं उपचार से दूर करना चाहिए।

उपचार हेतु रोगी का दृष्टिकोण -

आज चिकित्सा के बारे में असमंजस की स्थिति है। कोई रोग का कारण रासायनिक अंसतुलन एवं वायरस अथवा विषैले कीटाणुओं को मानते हैं तो कुछ वात, कफ, पित्त के असंतुलन को ही रोग का आधार बतलाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक वाणियाँ करते हैं। जितनी चिकित्सा-पद्धतियाँ उतने ही सिद्धान्त। किसी पद्धति को अवैज्ञानिक गलत नहीं कहा जा सकता। परन्तु अधिकांश चिकित्सा पद्धतियों में चिकित्सक प्रायः एक पक्षीय चिंतन के पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं। उनके चिंतन में समग्रता एवं व्यापक दृष्टिकोण का अभाव होता है।

जनसाधारण से ऐसी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि वे शरीर, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा-पद्धतियों के बारे में विस्तृत जानकारी रखें। अधिकांश रोगियों को न तो रोग के बारे में सही जानकारी होती है और न वे अप्रत्यक्ष रोगों को रोग ही मानते हैं। जब तक रोग के स्पष्ट लक्षण प्रकट न हों, रोग सहनशक्ति से बाहर नहीं आ जाता, विकारों की तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता। रोगी का एकमात्र उद्देश्य येन-केन प्रकारेण उत्पन्न लक्षणों को हटा कर अथवा दबाकर शीघ्रातिशीघ्र राहत पाना होता है। जैसे ही उसे आराम मिलता है, वह अपने आपको स्वस्थ समझने लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। रोगी रोग का कारण स्वयं को नहीं मानता और न अधिकांश चिकित्सक उपचार में रोगी की सजगता और पूर्ण भागीदारी की आवश्यकता ही समझते हैं। विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों की प्रभावशीलता के भ्रामक विज्ञापन एवं डाक्टरों के पास रोगियों की बढ़ने वाली भीड़ के आधार पर रोगी उपचार हेतु चिकित्सक को आत्मसमर्पण कर देता है। डाक्टर पर उसका इतना अधिक विश्वास हो गया है कि रोग का सही कारण अथवा निदान मालूम किए बिना उपचार प्रारंभ करवा शीघ्रातिशीघ्र राहत पाना चाहता है। रोगी चिकित्सक के द्वारा बताए पथ्य एवं परहेज और मार्गदर्शन का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन भी करता है, परंतु शरीर, मन और आत्मा पर उपचार से पड़ने वाले सूक्ष्मतम परिवर्तनों की तरफ पूर्ण रूप से उपेक्षित रहने के कारण उपचार के बावजूद स्वस्थ नहीं हो पाता और कभी-कभी तो दवा उसके जीवन का आवश्यक अंग बन जाती है।

रोग के विभिन्न प्रभाव एवं लक्षण -

रोग स्वयं की गलतियों से उत्पन्न होता है, अतः उपचार में स्वयं की सजगता और सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक है। जब तक रोगी रोग के कारणों से नहीं बचेगा, उसकी गंभीरता को नहीं स्वीकारेगा, तब तक पूर्ण स्वस्थ कैसे हो सकेगा? रोग प्रकट होने से पूर्व अनेकों बार अलग-अलग ढंग से चेतावनी देता है। परंतु रोगी उस तरफ ध्यान ही नहीं देता। इसी कारण उपचार एवं परहेज के बावजूद चिकित्सा लंबी, अस्थाई, दुष्प्रभावों वाली हो तो भी आश्चर्य नहीं? अतः रोग होने की स्थिति में रोगी को स्वयं से पूछना चाहिए कि उसको रोग क्यों हुआ? रोग कैसे हुआ और कब ध्यान में आया? रोग से उसकी विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं तथा स्वभाव में क्या परिवर्तन हो रहे हैं? इस बात की जितनी सूक्ष्म जानकारी रोगी को हो सकती है, उतनी अन्य को नहीं? उसके मल के रंग, बनावट एवं गंध में तो परिवर्तन नहीं हुआ? कब्ज अथवा दस्त या गैस की शिकायत तो नहीं हो रही है? पेशाब की मात्रा एवं रंग और स्वाद में तो बदलाव नहीं हुआ? भूख में परिवर्तन, प्यास ज्यादा या कम लगना, अनिद्रा या निन्द्रा और आलस्य ज्यादा आना, पाँच इंद्रियों के विषयों तथा रंग, रूप, स्वाद, स्पर्श एवं श्रवण, वाणी एवं दृष्टि की क्षमताओं में तो कमी नहीं आई? श्वसन में कोई अवरोध तो नहीं हो रहा है? स्वभाव में चिड़चिड़ापन, निराशा, क्रोध, भय, अधीरता, घृणा, क्रूरता, तनाव, अशान्ति तो नहीं बढ़ रही है? आलस्य एवं थकान की स्थिति तो नहीं बन रही है? दर्द कब, कहाँ और कितना होता है? मन में संकल्प विकल्प कैसे आ रहे हैं, इत्यादि सारे रोग के लक्षण हैं। जिनकी सूक्ष्मतम जानकारी रोगी की सजगता से ही प्राप्त हो सकती है तथा इन सभी लक्षणों में जितना-जितना सुधार और संतुलन होगा उतना ही उपचार स्थायी और प्रभावशाली होता है। मात्र रोग के बाह्य लक्षणों के दूर होने अथवा पीड़ा और कमजोरी से राहत पाकर अपने आपको स्वस्थ मानने वालों को पूर्ण उपचार न होने से नए-नए रोगों के लक्षण प्रकट होने की संभावना बनी रहती है।

रोगी ही जान सकता है कि उसका कौन सा अंग कब सर्वाधिक सक्रिय रहता है? अतः जब तक रोगी सजग नहीं होगा, रोग एवं उपचार से पड़ने वाले अच्छे अथवा बुरे परिणामों से परिचित नहीं होगा। तब तक वह हानिकारक प्रभावों से कैसे बचेगा? अतः उपचार में रोगी की सजगता परमावश्यक है। नेता को हटाने के लिए जिस प्रकार उसके सहयोगियों को अलग करना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार मुख्य रोग से छुटकारा पाने के लिए अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा से स्थायी समाधान कठिन होगा।

स्वास्थ्य के प्रति सरकारी उपेक्षा -

आज हमारे स्वास्थ्य पर चारों तरफ से आक्रमण हो रहा है। स्वास्थ्य-मंत्रालय की नीतियों में स्वास्थ्य गौण है। भ्रामक विज्ञापनों तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक प्रदूषण, पर्यावरण, दुर्व्यवसनों एवं दुष्प्रवृत्तियों पर प्रभावशाली कानूनी प्रतिबंध नहीं है। उल्टी वे सरकारी संरक्षण में पनप रही हैं। आज राष्ट्रीयता, नैतिकता व स्वास्थ्य के प्रति सजगता थोथे नारों और अंधानुकरण तक सीमित हो रही हैं। परिणामस्वरूप जो नहीं खिलाना चाहिए, वह खिलाया जा रहा है। जो नहीं पिलाना चाहिए उसे सरकार पैसे के लोभ में पिला रही है। कामवासना, क्रूरता, हिंसा आदि के जिन दृश्यों को सार्वजनिक रूप से नहीं दिखाया जाना चाहिए, मनोरंजन के नाम से दिखाया जा रहा है। जो नहीं पढ़ाना चाहिए वह पढ़ाया जा रहा है और जो अकरणीय एवं समाज एवं राष्ट्र के लिए घातक गतिविधियाँ हैं, वे करवाई जा रही हैं। आज रक्षक ही भक्षक हो रहे हैं। खाने में मिलावट आम बात हो गई है। सारा वातावरण पाशविक वृत्तियों से दूषित हो रहा है। सरकारी तंत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को सच्चाई जानने, समझने एवं उसकी क्रियान्विति में कोई रुचि नहीं है। सारे सोच का आधार हैं भीड़, संख्या और बल। क्योंकि जनतन्त्र में उसी के आधार पर नेताओं का चुनाव और नीतियाँ निर्धारित होती है। फलतः उनके माध्यम से राष्ट्र विरोधी, जनसाधारण के लिए अनुपयोगी स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली कोई भी गतिविधि स्वार्थवश आराम से चलाई जा सकती है।

उपचार हेतु रोगी की सजगता एवं सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक -

ऐसी परिस्थितियों में हमें अपने स्वास्थ्य का ख्याल स्वयम् रखना होगा। अपनी क्षमताओं को समझ उनका सदुपयोग कर डाक्टरों की पराधीनता को छोड़ना होगा। सर्वप्रथम रोग के कारणों से बचना होगा। कोई रोग एक दिन में प्रकट नहीं हो जाता। रोग कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे बाजार से खरीदा जा सके, उधार लिया जा सके अथवा चुराया जा सके? क्या हमारा श्वास कोई दूसरा ले सकता है? खाना अन्य कोई पचा सकता है? प्यास दूसरों के पानी पीने से शान्त हो सकती है? हमारी निद्रा अन्य कोई ले सकता है? शरीर से निकलने वाले मल, पेशाब आदि अवांछित तत्त्वों का विसर्जन दूसरा कर सकता है? हमारी रक्त, मांसपेशियाँ, कोशिकाएँ, हड्डियां जैसी प्रतिक्षण बनने वाली वस्तुएँ भी शरीर स्वयम् ही बनांता है। शरीर जब हृदय, फेफड़े, गुर्दे, लीवर, पाँचों इंद्रियों का निर्माण स्वयं कर सकता है तब क्या उसे स्वस्थ नहीं रख सकता? मानव-जीवंन अमूल्य है। अतः अज्ञानवश उसके साथ छेड़छाड़ न हो। वर्तमान की उपेक्षा भविष्य की समस्या न बने इस हेतु हमें अपने प्रति सजग, विवेकशील और ईमानदार बनना होगा। जो स्वयं लापरवाह, बेखबर है उसकी चिंता दूसरा कैसे कर सकता है? आज अधिकांश चिकित्सकों का दृष्टिकोण पूर्वाग्रहों से परिपूर्ण है। अहं से ओतप्रोत है। दुष्प्रभावों के प्रति उपेक्षापूर्ण है। उपचार में साधन, साध्य एवम् सामग्री की पवित्रता संदिग्ध है। उपचार में आत्मा और मन के विकार पूर्ण रूप से उपेक्षित हैं। अर्थात् उपचार की प्राथमिकताएँ ही गलत हैं। निदान अपूर्ण होता है तब सही उपचार, पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति की आशा, मिथ्या कल्पना नहीं तो क्या? स्थायी उपचार तो अपने आपको स्वावलंबी बनाने वाली, सभी काल में उपलब्ध सभी के लिए उपलब्ध सभी स्थानों पर उपलब्ध प्रभावशाली स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धतियों से ही संभव हो सकेगा। क्योंकि वे हिंसा पर नहीं अहिंसा पर आधारित हैं। विषमता पर नहीं समता पर तथा साधना पर आधारित है, जिनमें शरीर, मन एवं आत्मा तीनों के विकारों को दूर करने की क्षमता है। परंतु उसके लिए रोगी की सजगता, सम्यक् पुरुषार्थ और आचरण आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org